महिला उपन्यासकार की कृतियों में नारी पात्रों का मातृत्व के प्रति द्वन्द्व का चित्रण

बीज शब्द : मातृत्व, महिला लेखन, हिन्दी उपन्यास।

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

'मातृत्व' एक ऐसा शब्द जो हर नारी के व्यक्तित्व को नये आयाम प्रदान करता है। महिला उपन्यासकारों की लेखनी का कौशल उसके इस पक्ष की ओर भी गया। प्राचीनकाल में जहाँ नारी की उपादेयता मात्र मातृत्व के कारण थी वही, नारी चेतना में आये परिवर्तनों ने उसे जीवन के दो पायदानों पर खड़ा कर दिया। सर्वप्रथम उसे अपना भविष्य (कैरियर) सँवारना था, तो दूसरी ओर कैरियर बनने के बाद के खालीपन को भरता था और इसी प्रक्रिया में उसके भीतर उपजा मातृत्व के प्रतिद्वन्द्व। अपनी इस शाश्वत रचना प्रक्रिया में शामिल होकर नारी कही अपने अस्तित्व का बोध करना चाहती है, तो कहीं-कहीं मातृत्व को लिजलिजी पुरूष परम्परा का प्रतीक मानकर एक सिरे से खारिज कर देती है। आज की व्यस्त भागदौड़ भरी जिन्दगी, भौतिक सुविधाओं की ललक, स्वचेतना, सामाजिक मूल्यों का विघटन, वूमेन लिब (नारी मुक्ति) ने पारम्पारिक समाज की रूपरेखा को बहुत हद तक बदल दिया है। अपनी देह को अपने अधिकार में लेकर, इन महिला उपन्यासकारों (चित्र मुदगल, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, ममता कालिया, मन्नू भंडारी ....) की नारी पात्रएँ अपनी रचनाशीलता का मुकाम मातृत्व में पाती। है। अपनी बुनावट को अपने आँगन में बढ़ता, पनपता देखने की इच्छा मन में पाले है तो कही मातृत्व से बचने के लिये गर्भ निरोधक उपायों को अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाती है। वैवाहिक निष्ठा, नारी कौमार्य, यौन नैतिकता जैसे उपादनों से दूर अपनी स्वतन्त्र सत्ता में अपना निहित खोजती ये नारी पात्र सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़े कर रही है।'

डॉ. ऋतु त्यागी
४५, ग्रेटर गंगा,
गंगा नगर, भवाना रोड,
मेरठ।

भारत की सभ्यता के विकास क्रम में सिन्धुघाटी की सभ्यता में मातृ सत्तात्मक व्यवस्था थी जहाँ मातृ देवी की विभिन्न प्रकार से पूजा की जाती थी स्मृतिकार मनु ने भी कहा है- "ब्रह्मा ने स्त्रियों की रचना गर्भधारण के लिये की है।" इस कथन का निहितार्थ भी यही निकलता है कि सन्तानोत्पत्ति अनिवार्य है। नारी प्राकृतिक रूप से भावना प्रधान होती है और फिर अपने द्वारा जन्मे शिशु से उसकी ममता स्वंय सिद्ध है। नारी का पूरा जीवन शिशु को जन्म देकर उसे पालपोसकर बड़ा करने और उसके हर छोटे-बड़े सुख को अपना मान लेने में ही व्यतीत हो जाता है। सृष्टि का विकासक्रम इसी आधार पर चलता रहा है पर अब नारी चेतना के धरातल पर आये व्यापक परिवर्तनों ने नारी को अपने बारे में ठहकर सोचने पर मजबूर कर दिया है, इतिहास या साहित्य में उसके मातृत्व को लेकर जो कुछ भी कहा गया। वह उस पर अपनी दृष्टि से विचार करना चाहती है, जैसे- प्रख्यात लेखक कथाकार जैनेन्द्र कुमार ने स्त्री के मातृत्व के सम्बन्ध में कहा था- 'स्त्री की सार्थकता मातृत्व है' और जब वे ऐसा कहते हैं तो उसके पीछे नारी दृष्टि नहीं, बल्कि पुरूष दृष्टि काम कर रही होती है। पुरूष लेखकों की कलम से नि:सृत सहित्य और उनसे प्रेरणा प्राप्त महिला लेखिकाओं का साहित्य मातृत्व के बिना स्त्री जीवन को अपूर्ण मानता है। प्रेमचन्द, शरतचन्द्र, जैनेन्द्र कुमार सभी महान लेखकों का साहित्य यही व्यक्त करता हैं, पर 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में उग्र नारीवाद ने जन्म लिया तब से मातृत्व की परिभाषा ही बदल गयी। कथाकार कवयित्री अर्चना वर्मा के शब्दों में- "मातृत्व स्त्री को प्राकृतिक रूप से उपलब्ध सार्थकता का एक सहज अवसर है, पर स्वाधीन स्त्री के लिए यह न केवल कैरियर में बाधक, अनावश्यक सिरदर्द, बल्कि पराधीनता की कुंजी है। मातृत्व के अनेक पक्ष महिला उपन्यासकारों की लेखनी का हिस्सा बने। कभी मातृत्व महिमामंडित हुआ तो कभी एक सिरे से उसे नकार दिया गया।

मन्नू भंडारी की कृति 'आपका बंटी' नायिका शकुन के इसी द्वन्द्व को सटीक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। पति-पत्नी के मध्य तलाक की स्थिति उत्पन्न होने पर बेटे-बंटी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। शकुन जब तक अपनी इच्छाओं को दफन किए रहती है तब तक वह ममतामयी माँ से अभिषिक्त होती है पर डॉ. जोशी से पुनर्विवाह के बाद शकुन की स्थिति अपराध बोध से भरी उस स्त्री की हो जाती है जो न केवल बेटे की नजर में अपितु समाज की नजरों मे भी अपराधी सिद्ध की जाती है- "जवानी यों ही अंधी होती है बहू, फिर बुढ़ापे में उठी हुई जवानी महासत्यानाशी साहब

ने जो किया तो आपकी मट्टी-पलीद हुई और अब आप जो कर रही हैं, इससे बच्चे की मट्टी-पलीद होगी"[2]

इस उपन्यास में सबकी सहानुभूति बंटी के साथ हैं पर शकुन की इच्छाओं कामनाओं का क्या.....? बंटी के बड़े होने पर शकुन की क्या उपयोगिता रहती? ऐसे तमाम तरह के प्रश्न उठते हैं।

नारी के मातृत्व के प्रति इसी द्वन्द्व को दर्शाती प्रभा खेतान की लेखनी उनके उपन्यास "आओ पेपे घर चलें" में नायिका प्रभा कैथी के बारे में सोचती है- "वह अपने में मगन। बच्चा नहीं चाहिए। आपकी अपनी जिन्दगी बच्चे के लिए आहुति हो जाती है।"[3] कैथी एक स्वतन्त्र विचारधारा वाली युवती है, जो वही, सब करना चाहती है, जो उसका मन होता है, इसी प्रक्रिया में वह कोई जिम्मेदारी भी ओढ़ना नहीं चाहिए। "मुझसे बच्चा नहीं सम्हलेगा। बेबी सिटर पर पलने से अच्छा है, पैदा मत करो।"[4]

कैथी न केवल दायित्व बोध से बचना चाहती है, बल्कि उसे मातृत्व जीवन की सार्थकता प्रतीत नहीं होती है प्रभा (नायिका) के यह पूछने पर कि- "माँ बनने की इच्छा नहीं होती "[5] नायिका का यह आग्रह कुछ उसके भारतीय संस्कार तथा कुछ कैथी के वैवाहिक जीवन की नीरसता को देखकर है पर कैथी आक्रोश में उसका प्रत्युत्तर देती है- "क्या बकवास कर रही हो? बच्चा मेरी जिन्दगी को सार्थक बना देगा? वह तो केवल मेरी जिन्दगी के और बीस वर्ष खा जायेगाा और उसके बाद कोई नहीं रहेगा। वह घर छोड़कर पता नहीं कहाँ किस जगह .....।"[6]

कैथी के उपरोक्त कथन में सत्य का वह अंश है जो हर नारी की नियति बन जाता है। अपने शिशु को पाल-पोसकर बड़ा करती नारी शिशु के वयस्क होने पर उपेक्षित करार दी जाती है। प्रभा खेतान का ही दूसरा उपन्यास 'छिन्नमस्ता' नायिका प्रिया के मातृत्व के प्रति द्वन्द्व को उसकी विचारधारा के माध्यम से प्रकट करता है। प्रिया समाज की जर्जर मान्यताओं और पुरूष की कामलिप्सा से शोषित हो अपनी जीवन-यात्राा को अकेले तय करने का निश्चय करती है। पर यहाँ प्रश्नचिह्न के रूप में उसका बेटा संजू है? प्रिया स्वयं को अच्छी माँ नहीं मानती पर अच्छी माँ होने के लिए उसके भीतर कोई छटपटाहट या बैचेनी भी नहीं है। वह बच्चे के विरूद्ध नहीं है पर मातृत्व के लिए कोई हाहाकार भी नहीं हैं। एक से तरह से उसका यह मातृत्व के प्रति अस्वीकार भाव ही है वह कहती है- "बच्चा खालीपन को कितने वर्ष भरता है। पाँच वर्ष, दस वर्ष..... अपनी माँ से पायी तल्खी ही शायद प्रिया को मातृत्व के भ्रम को तोड़ने में मद्दगार सिद्ध होती है। पुरूष से अधिक पूँजी कमाकर विवाह संस्था से बाहर अपनी पहचान बनाने में लगी हुई प्रिया के लिए मातृत्व बेड़ी ही साबित होगा वह खुद कहती है- "मैं संजू के सहारे जिन्दगी नहीं बिता सकती न ही पति या बेटा या प्रेम ही जिन्दगी के सहारे हो सकते है।"[8] प्रिया की यही विचार धारा उसे उन सभी स्त्रियों से अलग ला खड़ा करती है, जो मातृत्व में ही अपनी सार्थकता तलाशती फिरती है। "उस बच्चे को हम बड़ों ने कौन-सा मूल्यबोध दिया? मातृत्व के झूठे गौरव को महिमा मंडित करने की मेरी इच्छा नही हुई"[9] प्रिया का यह भाव नारी की बदलती चेतना का ही प्रकटीकरण है, जो अपनी पहचान स्थापित करने में लगी हुई है। प्रिया यहाँ स्वयं को निर्दोष सिद्ध करती हुई लगती है कि वह मातृत्व को अस्वीकृति नहीं दे रही। बल्कि संजू के पालन-पोषण को ही जिम्मेदार ठहरा कर स्वयं को निर्दोष सिद्ध कर रही है- "दादी की अत्यधिक ममता लाड़ दुलार, पगडंडियों पर चलते हुए मेरे लहुलूहान कदमों के पीछे संजू के कोमल कदम नहीं चल सकते थे। उन कदमों को राजमार्ग पर चलने की आदत पड़ गयी थी विरासत में केवल धन नहीं मिलता। स्वभाव भी मिलता है।"[9] ऐसा कहकर प्रिया अपने दायित्व ही नहीं, बल्कि मातृत्व के प्रति अस्वीकार को सबके समक्ष स्वीकारने से भी छुटकारा पा लेती है।

महिला उपन्यासकारों के नारी पात्र कहीं मातृत्व को अस्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं तो कही मातृत्व के बिना उन्हें अपना जीवन आधारहीन लगता है और 'बाँझ' जैसे शब्द उसे शूल की तरह लगते है। एक नन्हें शिशु को देखकर हर स्त्री अपने भीतर कुछ टटोलने लगती है। नारी अपनी समरूपा सन्तान को जन्म देकर अपनी ही दृष्टि में कुछ ऊँची हो जाती है। एक सामान्य से सामान्य स्त्री भी जिसके पास न शैक्षिक आधार होता है और न ही आर्थिक। माँ बनने पर गौरव की एक अनुभूति की यात्रा करती है। सृजन का सुख उसके जीवन के समस्त अभावों की पूर्ति करता प्रतीत होता है।

मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' की यही समस्या है कि उसकी नारी पात्राएँ माँ बनना चाहते हुए भी, बन नहीं पाती। इस उपन्यास के सभी पात्रों के लिए विवाह संस्था समाप्तप्राय है। इसकी कोई भी पात्र माँ नहीं बन पाती। और नायक पिता बनना चाहते हुए भी नहीं बन पाता। इस तरह यह उपन्यास बाँझ औरतों की कथा है चाहे वह स्मिता, मारियान, असीमा, नर्मदा और नीरजा हो। स्मिता जीजा द्वारा बलात्कार की शिकार होकर घर से भागकर अमेरिका में शरण लेती है पर वहाँ भी दुर्भाग्य उसका पीछा नहीं छोड़ता। मनोचिकित्सक जिम जारविस से विवाह करती है पर वह स्मिता को पागल करार दे उससे तलाक ले लेता है। इसी मध्य स्मिता का उसकी हिंसक चोटों से गर्भपात हो जाता है- "मैं जारविस को अपना खून माफ नहीं करूँगी। मेरा शरीर जीवित बच गया तो क्या मेरी रूह तो मर गयी। मेरा बच्चा, मेरी रूह की परछाई, मेरा अजन्मा, इकलौता बच्चा, मेरी देह का रोम-रोम चीखे मार रहा था, पर मैं उन्हें मुँह से बाहर नहीं निकलने दे रही थी"[11]

गर्भपात के बाद स्मिता फिर कभी माँ नहीं बन पाती। और मातृत्व का मोह उसे कभी सामान्य भी रहने नहीं देता। मारियान इस उपन्यास की एक और पात्र है। वह इर्विंग (रचनाकार) से शादी करती है पर उसके द्वारा भावात्मक ठगी का जब उसे बोध होता है तब तक उसके हाथ से बहुत कुछ निकल चुका होता है। इर्विंग से तलाक के बाद वह दूसरा विवाह करती है। और फिर से उसके भीतर मातृत्व की चाह जन्म लेने लगती है- "दूसरी शादी करते ही, मैने सरेआम ऐलान कर दिया था कि अतीत की हताशा, कुंठा आदि से छुटकारा पाने के लिए मैं एकदम घिसा-पिटा नुस्खा अख्तियार करने वाली हूँ। वही, दनादन बच्चें पैदा करने का। मेरा इरादा पाँच साल में तीन बच्चों को जन्म देने का था"[12] पर मारियान अपने इरादे को मूर्त रूप नहीं दे पाती।, क्योंकि जब भी उसके भीतर मातृत्व के चिह्न उपस्थित होते हैं उसका गर्भपात हो जाता। बार-बार गर्भपात होने से मारियान की मातृत्व की चाह और अधिक जोर मारने लगती है- "उसे प्राप्त करने से पहले मुझे एक बच्चा चाहिए था। अब और भी, जब मेरे गर्भ में एक नहीं चार बच्चे हलाक हो चुके थे।"[13] मारियान बार-बार गर्भधारण करने के बावजूद माँ नहीं बन पाती। बच्चा गोद लेना चाहती है पर ले नहीं पाती।, क्योंकि उसका दूसरा पति गैरी छोटे-बच्चे बर्दाश्त नहीं कर पाता और अमेरिकी कानून मारियान को बिना पिता के बच्चा गोद लेने की इजाजत नहीं देता। मारियान का गर्भाशय फारब्रायड्स से इतना भर चुका था कि उसमें किसी शिशु के आने का कोई अवसर न था। ऐसे में चालीस पार की मारियान को गर्भाश्य ही निकलवाना पड़ता है पर माँ बनने की चाहत उसके मन में स्थायी भाव जमा लेती है जिसे वह स्मिता के समक्ष कुछ इस प्रकार व्यक्त करती है- "मुझे खुद का अपना बच्चा चाहिए। मैं उसे अपने आँगन में खेलता-बढ़ता देखना चाहती हूँ। ..... हाँ, मैं एकदम पारम्परिक जाहिल, गँवार, प्राकृत औरत हूँ ..... मैं चिल्ला-चिल्ला कर कहती हूँ, मैं एक बच्चा पालना चाहती हूँ, मैं उसका पहला शब्द सुनना चाहती हूँ।"[14] यहाँ तक कि वह बच्चे के लिए सभी जिम्मेदार लोगों को माफ तक कर देने के लिए तैयार है- ".. .. मैं पालना-पोसना, सहेजना-सँवारना चाहती हूँ। मैं सर्जक होना चाहती हूँ। .....बस एक बच्चा मिल जाए तो मैं सबकुछ माफ कर दूँ।"[15] वही, नर्मदा निम्न वर्गीय अशिक्षित स्त्री है पर वह भी उसी सनातन चाह (मातृत्व) से ग्रसित है जिसके चलते वह दूसरे पुरूष से सम्बन्ध बनाने में भी नहीं हिचकती पर फिर भी माँ नहीं बन पाती।- "किस्मत मेरी न मर्द मिला, न बालक। दो साल में जने कित्ती बार वो, मेरा भर्तार साथ रह लिया पर एक बार जो कोख हरी हुई हो। एक बालक हो जाता तो आज अपना कहने को कोई होता।"[16] नर्मदा, स्मिता, मारियान और यहाँ तक कि इस उपन्यास की सर्वाधिक दबंग पात्र असीमा भी मासिक धर्म शेष रह जाने की आयु में माँ बनने की चाह में विपिन (मुख्य पात्र) से सम्बन्ध बनाती है पर परिणाम .....? मारियान और ये तीनो औरतें (अस्मिता, नर्मदा, असीमा) अपनी बंजर होती कोख के लिए रूदाली की भाँति बस हाहाकार कर सकती हैं। नर्मदा कहती है- "बात है बीबी। बाँझ औरतों को रोना जरूर चाहिए। ना रोओं तो अगले जन्म में भी कोख वीरान जावे है।"[17] "चुप करेगी कि नहीं। "मैनें (असीमा) उसे फटकारा जरूर पर जाने क्या हुआ कि हम तीनों औरते फूट-फूट कर रो दी।"[18] यह उपन्यास मातृत्व की चाह लिए बौद्धिक स्त्रियों का करूण क्रंदन है और उपन्यास का नाम इसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी देता है- 'कठगुलाब'।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' नायिका अंकिता के लिए अपने व्यक्तित्व की रचना प्रक्रिया है। पति सुधांशु के साथ असहज हुए संबंध माँ बनने के उसके अधिकार का हनन करते हैं। गर्भ में ही बच्चें की मृत्यु अंकिता की गहन पीड़ा का कारण बनती है। वही, सुधांशु के हिंसक वाक्य उसे तीखी चोट पहुँचाते हैं। सुधांशु ने कहा था- "अच्छा हुआ जो हमारा बच्चा जीवित नहीं रहा, नहीं तो ताउम्र वह मुझे तुमसे जोड़े रहता। कुरेदता रहता कि तुम मेरे बच्चे की माँ हो.....।"[19] प्रत्युत्तर में अंकिता भी कम मर्मभेदक नहीं है पर यह मातृत्व के प्रति उसका अतिरिक्त मोह ही है कि वह शिशु को पति-पत्नी के प्रेम का प्रतीक मानती है- "मेरे लिए भी उसका मरना मेरी जिन्दगी से तुम्हारा निष्कासन है..... वरना उसकी शक्ल में जिन्दगी भर मुझे तुमको ढोना पड़ता..... क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था.. तुम्हारी कामुकता का परिणाम था।"[20]

सुधांशु को कटु वाक्य कहती हुई यही अंकिता हरीन्द्र नामक मित्र से उसके बेटे का नामकरण करती हुई कहती है- "अंशुल, यह मेरे अजन्मे बेटे का नाम है हरीन्द्र।"[21] और फिर अपनी गहरी दोस्त नीता की नवजात बेटी को हाथ में लेते हुए अंकिता की ममता उभरकर सामने आ जाती है- "गुलाबी ऊन के नर्म गुलगुले गोले-सी बच्ची आँखे भींचती खोलती, बेदुर काढ़ती कसी होने बावजूद अलसाहट तोड़ती सिर पर पोरभर रेशम से काले-काले बाल।"[22]

राजी सेठ का 'निष्कवच' का दूसरा वृतान्त का नायक अपनी माँ और पत्नी बनाम प्रेयसी मार्था से प्रभावित है, पर वह प्रेयसी से आक्रान्त भी है और माँ से गहरे जुड़े हुआ। अमेरिका में मार्था के साथ रहने के बाद भी माँ के साथ उसका निरन्तर पत्रचार चलता रहता है और वह माँ के पत्र में डूबा मार्था के पार्टनर राबर्टस से कह उठता है- "....संसार की ऐसी कोई किताब नहीं होगी जहाँ माँ दर्ज न हुई हो, क्योंकि माँ व्यक्ति नहीं, सनातनता है। शी इज ए टाइमलेस कान्सेप्ट। तभी तो वह सब को ऐसी ही लगती है। एक जैसी शी एक्साइट्स द सेम फीलिंग्स एवरी व्येहर।"[23] माँ के

मातृत्व से रीझा यह नायक मार्था में भी माँ को ही तलाशता रहता है।

ममता कालिया के उपन्यास एक पत्नी के नोट्स की नायिका कविता अपने आई0ए0एस0 पति संदीप से इतना आक्रान्त है कि उससे अपनी माँ बनने की चाह प्रकट नहीं कर सकती, पर उसके भीतर बैठी माँ शिशु को पति-पत्नी के मध्य का सेतु स्वीकार करती है- "…. कविता के मन से कई इच्छाएँ अपने नन्हे-नन्हें नरम हाथ-पाँव ऊपर उठाने लगती उसे लगता उन दोनो के बीच एक प्यारा शिशु अगर आ जाये तो जीवन का यह अमृत कुछ किनारे तक भर जाये।"[24]

'आवाँ' चित्र मुद्गल द्वारा रचित एक ऐसा उपन्यास है जिसमें नायिका, नमिता की माँ एक ऐसी माँ का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके लिए नमिता आँख की किरकिरी है। पूर्णत: अवांछित, नमिता के साथ मारपीट से भी बाज नहीं आती नमिता के परिवार में उसके लकवाग्रस्त पिता है। माँ श्रमजीवा संस्था में पापड़ बेलकर फुटकर कमाई करती है। नमिता को भी माँ के संग श्रमजीवा जाना पड़ता है पर मैडम अंजना वासवानी से मुलाकात नमिता की उर्ध्व यात्राओं का कारण बनती है, पर माँ की अवाँछना- "श्रमजीवा निकलने से पूर्व पच्चीसों बार आईना देखने की शौकीन माँ कभी अपने चेहरे पर गौर क्यों नहीं करती कि अपनी औलादों के लिए वे उस जर झोंसी औरत का चेहरा क्यों पहन लेती है?"[25] छिन्नमस्ता उपन्यास की प्रिया का बालमन माँ की उपेक्षा से उपेक्षित है जो दाई माँ की गोद में शरण ढूँढता है- "मेरे लिए माँ यानी दाई माँ। मुझे अपनी माँ की न गोद याद है न उसका कोई स्पर्श, मेरा नाम ही था दाई की बेटी, वैसी ही काली।"[26] माँ का कोई स्पर्श प्रिया को याद न रहना इस बात को पूर्णत: सिद्ध करता है कि वह किस हद तक माँ के लिए अवांछनीय थी। पिता का स्नेह प्रिया को मिला पर माँ की उपेक्षा पिता के स्नेह से कही अधिक बड़ी थी- "बाबूजी मुझे गोद में लेकर अम्मा को बगल में लिटा गये। मुझे अम्मा का चिल्लाना याद आ रहा है, ओ हो। एक तो मैं ऐसी ही मरी जा रही हूँ और दूसरे इसको मेरी छाती पर लाद गये।"[27] पिता का स्नेह भी प्रिया के साथ अधिक समय तक नहीं रहता। जब वह केवल नौ वर्ष की थी तभी उसके पिता की हत्या हो जाती है और वह पितृत्व स्नेह से भी वंचित रह जाती है। प्रिया को जीवन भर माँ का स्नेह न मिलने की कचोट सालती रहती है। वह अतीत में लौटते हुए कहती है- "उन्होंने कभी मुझे प्यार नहीं किया कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटो उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती, शायद अम्मा मुझे भीतर बुला ले …….। मगर नहीं एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।"[28] निष्कवच वृतान्त दो की नायिका मार्था नायक से यौनाचार करती पर माँ बनना नहीं चाहती इसलिए गर्भ में आए शिशु को गिरवा आती है और नायक के जवाब-तलब करने पर कहती है- "यह तुम क्या बक रहे हो? यह मेरी देह है। मेरा निजी मामला। मेरा ही परमाधिकार।"[29] आगे नायक से अपनी देह पर अपने परमाधिकार के विस्तार का ब्यौरा देते हुए कहती है- "मैं अमिनोसेण्टोसिस के लिए गयी थी पता लगा लड़का है। तब तो और भी आसान हो गया मेरे लिए फैसला। भला मैं क्यों उनकी नस्ल को बढ़ाना चाहूँगी- दीज ब्रूट्स। इन्होंने सदियों से हमें कुचलकर रखा है।"[30] पुरूष से बदला लेने के लिए वह सदियों से दमन का वही, पुरूषवादी रवैया ही अपनाती है। अपने मातृत्व को कुचलकर।

जहाँ नारी मानस में क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हुए हैं, वही, पुरूष का पारम्परिक मानस वैसा ही है, जैसा सदियों पहले था। घरेलू मोर्चे पर वह अभी भी अपनी पत्नी का मुखापेक्षी है। वैसे भी घरेलू कार्य उसे हीन लगते है। ऐसे में नारी के दायित्व बढ़ जाते हैं। यदि वह विवाह नही करती तो भावनात्मक दृष्टि से असुरक्षित होती है और यदि करती है तो घरेलू कार्य उसकी अधिकांश ऊर्जा को सोख लेते है। इस स्थिति में उसके पास दो विकल्प होते है या तो वह अविवाहित रहे या फिर नौकरी छोड़कर अपनी पारम्परिक छवि में लौट जाये। लेखक अभय कुमार दुबे इस प्रकार की नारी की शोध रपट में कहते हैं- "समाज और परिवार इस नयी औरत को कुछ इस तरह दबाव में लाता है कि वह विवाह करने और सन्तानोत्पत्ति के बाद स्वयं घर-परिवार के लिए अपना कैरियर छोड़कर वापस चली जाती है, बहुत बड़े पैमाने पर नौकरी पेशा औरतें में यह प्रवत्ति देखी गयी है। बाजार के आग्रहों में घरेलू काम और बच्चों के लालन-पालन के पारम्परिक काम का समाजीकरण करने का कोई स्थान नहीं है।"[31] चारो ओर से हताश यह नारी जब घर वापस लौटती है तो अपने कैरियर त्याग की कसक इसके मन में मौजूद रहती है वही, वह विवाह और मातृत्व को समर्पित भी नहीं हो पाती।, क्योंकि इसके जीवन के अधिकांश वर्ष तो कैरियर निर्माण की दौड़ में ही लग जाते है और ये नारी आर्थिक कारण ों से न तो नौकरी छोड़ पाती है और न घर के दायित्वों से मुक्त हो पाती। है, उसके भीतर किसी भी मोर्चे पर सफल न होने की कचोट रह जाती है। इन सब स्थितियों के चलते नारी मातृत्व के प्रति द्वन्द्वात्मक हो जाती है। विकास और भूमण्डलीकरण के इस दौर में जीवन के प्रति जहाँ सभी की प्राथमिकताएँ बदली हैं वही, नारी के जीवन में भी कुछ ऐसा ही हुआ। पहले विवाह और मातृत्व उसकी प्रथम आकांक्षा थी, वहीं, अब कैरियर भी इस रास्ते पर था। समाजशास्त्री प्रोमिला कपूर कहती हैं- "सामाजिक मूल्यों का यह औधापन एक पौरूषी वरिष्ठता और स्त्रियों के दमन पर आधारित था जो इस बात पर जोर देते थे कि पत्नियाँ केवल प्रजनन और घर-परिवार की देखभाल के लिए होती है जबकि कुछ खास अन्य स्त्रियाँ यौन सुख के लिए होती हैं। यौन नैतिकता के दोहरे मानदण

डों की प्रमुखता के कारण सैक्स के मामले में पुरूषों को काफी छूट थी"[32]

मातृत्व के प्रति नारी की विचारधारा यौन शुचिता के बदलते मायनों से भी प्रभावित हुई। स्त्री शिक्षा ने नारी व्यक्तित्व को जो स्वन्त्रता उपलब्ध करायी उससे स्त्री के भीतर एक नई चेतना का अभ्युदय हुआ। समाज की तमाम परम्पराओं के विरूद्ध बिगुल बजाती यह स्त्री यौन-नैतिकता के आदेशों, उपदेशों की अवज्ञा भी करने लगी यौन वर्जनाओं के छूटने में सर्वाधिक प्रभावकारी भूमिका गर्भ-निरोधक गोलियों या उपकरणों की थी अर्चना वर्मा (कथाकार कवयित्री) इन गर्भ निरोधकों के सन्दर्भ में कहती हैं- "स्त्री स्वयं अपने आप को लेकर अपने शरीर को लेकर सदियों से इतनी सहज कभी नहीं थी जितनी सदी के अंत में केयर-फ्री, विस्पर, माला-डी और कोहिनूर और पीटरपैन और लिवर्टीना के माध्यम से अपने मासिक धर्म, अपने उन्मद रतिभाव और अपने दैहिक ऐश्वर्य के विषय में हुई है।"[33] यह कथन बिल्कुल सत्य है कि सदी का अन्त होते-होते स्त्री मुक्ति की सांस लेने लगी है। अपनी लज्जाशील छवि से यह स्त्री की मुक्ति थी। अर्चना वर्मा आगे कहती है- "परम्परागत समाज की नींव अगर स्त्री की शर्मिंदगी पर टिकी थी तो बेशक वह हिल उठी है।"[34] गर्भ निरोधक जब तक स्त्री के जीवन में नहीं थे तो उसके जीवन में यौन सम्बन्धों का सीधा-सा अर्थ था मातृत्व और यह मातृत्व कभी उसके लिए सार्थक बना और कभी बेड़ी बनकर उसको बाँधने लगा। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा एक आत्मनिर्भर कामकाजी युवती है। जीवन के बत्तीस -तैंतीस वर्ष गुजारने के बाद भी वह अविवाहित है। तब उसके जीवन में उससे पाँच वर्ष कम वय का नील आता है। सुषमा नील के साथ दैहिक रूप से जुड़ती है- "नील से सम्बन्ध सुषमा का व्यक्तिगत निर्णय है और यह निर्णय वास्तव में उसका मूक विद्रोह भी है और यौन नैतिकता के आदेशों-उपदेशों की अवज्ञा भी "[35] सन् 1962 ई0 में लिखा गया यह उपन्यास यौन-नैतिकता के क्षेत्र में कई सवाल खड़े कर गया।" यह उसके (सुषमा के) मानसिक विकास का मुक्त रूप भी हो सकता है और बदलते समय में टूटती यौन वर्जनाओं का परिणाम भी गर्भ-निरोधक गोलियों या उपकरणों ने भी यौन वर्जनाएँ तोड़ने में निश्चय ही एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।"[36] इन्हीं गर्भ-निरोधकों ने नारी की देह को उसके अधिकार में सौप दिया और मातृत्व से मुक्ति का अवसर भी प्रदान कर दिया- "मातृत्व से मुक्ति के अवसर ने उसे स्वयं को देह में और देह को हथियार में बदल लेने की ताकत दी है। बाजार के अर्थशास्त्र के अनुसार, इसका अर्थ है सौन्दर्य का औद्योगिकीकरण और देह का उपभोक्तावाद।"[37]

'आवां' उपन्यास में नमिता का चरित्र आश्चर्य में डालता है कि वह संजय कनोई से देह सम्बन्ध जिस सरलता से बना लेती है उतनी सरलता से वह गर्भ निरोधक उपायों के प्रयोग पर जोर क्यों नहीं दे पायी? इसलिए गौतमी (मित्र) के सफारी बैग में निरोध के पैकेट को देख सकपका जाती हैं- "हर्षा मुझे तो साँप सूँघ गया। जानती है, चाभियों के अलावा बटुवे में और क्या हाथ लगा? निरोध का खुला हुआ पैकेट लगा, जैसे किसी ने हथेली पर बिच्छू रख दिया हो।"[38]

एक शिक्षित लड़की अनेक बार के दैहिक संसर्ग के बाद भी गर्भ निरोधकों को देख घबरा जाती है। यह निश्चय ही आश्चर्य का विषय है? जहाँ नमिता का व्यवहार निम्न मध्यमवर्गीय मानसिकता को दर्शाता है वही, उसकी सहेली स्मिता किसी का बच्चा अपने गर्भ में ढोना नहीं स्वीकारती- "गधे की औलाद मैं तेरे बच्चे की कुँआरी माँ नहीं बनना चाहती..... जो लड़का कंडोम इस्तेमाल करना नहीं जानता वह मेरा प्रेमी होने के काबिल नहीं।"[39] यह निश्चित ही यौन वर्जनाओं के टूटने का परिणाम था।

उपरोक्त उपन्यासों के अध्ययन के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समय के साथ बदलते दृष्टिकोण ने नारी के मातृत्व भाव को द्वन्द्व की स्थिति में डाल दिया। सदियों से चले आ रहे मातृत्व भाव को, जिसपर बैठकर नारी पुरूष की दृष्टि में सम्मान की अधिकारी बनी, जिस मातृत्व की उपलब्धि न होने पर नारी न केवल समाज की दृष्टि में अपितु अपनी दृष्टि में भी एक ऐसी अपराधी बन जाती, जिस अपराध के लिए उसका कोई दोष नहीं होता। उसी मातृत्व के विषय में वह सोचने पर विवश हुई। नारी की मातृत्व प्रेम भी सर्वविदित है। उपन्यास कठगुलाब की नारी पात्राएँ मातृत्व प्रेम के वशीभूत हैं लेकिन उसे प्राप्त नहीं कर पाते। 'पीली आँधी' उपन्यास की सोमा इसी मातृत्व हेतु, विवाहेत्तर संबंधी बनाती है। तो दूसरी ओर कुछ उपन्यासों के नारी पात्रों के लिए मातृत्व बाधक है, उसकी प्रगति में, स्वतन्त्रता में (आओं पेपे घर चले की कैथी)। महिला उपन्यासकारों द्वारा नारी के इस द्वन्द्व को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है। नारी के जीवन की यह प्राकृतिक अनिवार्यता अब उसको अधिकार में आ गयी। उसकी इच्छा या अनिच्छा उसके स्वतन्त्र होते व्यक्तित्व का ही परिणाम है।

सन्दर्भ:-

1. स्त्री का भविष्य-अर्चना वर्मा हंस जनवरी-फरवरी, 2000, अंक अक्षर प्रकाशन, पृ0 7।
2. आपका बंटी -मन्नू भंडारी राध्कृष्ण प्रकाशन सन् 1971 पृ0 67।
3. आओ पेपे घर चलें-प्रभा खेतान हंस अप्रैल मई जून अंक, अक्षर प्रकाशन, सन् 1990, पृ0 72-73।
4. वही,
5. वही,
6. वही,

शेष पृष्ठ 60 पर

प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-335-326, दो0-9
21. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली, पृ0-307, कड़वक-407
22. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-335, कड़वक-326
23. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-9
24. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-307, कड़वक-407
25. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-335, कड़वक-327
26. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
27. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मौलानादाऊद दलमईकृत चंदायन, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,1964,दिल्ली,पृ0-308, कड़वक-409
28. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-336, कड़वक-329
29. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
30. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-337, कड़वक-330
31. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-146, दो0-11
32. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-338, कड़वक-331
33. शुक्ल, आ0 रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005, नागमती-वियोग खंड, पृ0-147, दो0-14
34. गुप्त, परमेश्वरी लाल, कुतुबनकृत मिरगावती, प्रथम संस्करण,1967, वाराणसी, विश्वद्यिालय प्रकाशन, पृ0-338, कड़वक-331

पृष्ठ 48 का शेष

7. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान हंस जनवरी-फरवरी मार्च 1991, अक्षर प्रकाशन, पृ0 50।
8. वही, पृ0 55।
9. वही, पृ0 58।
10. वही, पृ0 69।
11. कठगुलाब-मृदुला गर्ग भारतीय ज्ञानपीठ सन् 2000 पृ0 56।
12. वही, पृ0 97।
13. वही, पृ0 98।
14. वही, पृ0 104।
15. वही,
16. वही, पृ0 147।
17. वही, पृ0 194।
18. वही, पृ0 194।
19. एक जमीन अपनी, चित्र मुद्रगल प्रभात प्रकाशन 1990 पृ0 19।
20. वही,
21. वही, पृ0 196।
22. वही, पृ0 205।
23. निष्कवच राजी सेठ भारतीय ज्ञानपीठ 1995 पृ0 84-85।
24. एक पत्नी के नोट्स ममता कालिया मयूर पेपर बैक्स छाया-मयूर अक्टूबर दिसम्बर, 1994 पृ0 333।
25. आंवा-चित्र मुद्गल सामयिक प्रकाशन 1999 पृ0 47-48।
26. छिन्नमस्ता प्रभा खेतान हंस जनवरी-फरवरी मार्च, 1991 पृ0 55।
27. वही,
28. वही, पृ0 58।
29. निष्कवच, राजी सेठ, भारतीय ज्ञानपीठ, 1995 पृ0 91।
30. वही, पृ0 92।
31. पितृ सत्ता के नये रूप-ताकतवर औरत की मजबूरियाँ अभयकुमार दुबे-हंस अक्षर प्रकाशन मार्च, 2001 पृ0 37।
32. कॉलगर्ल्स- मूल समस्या तथा विचार पद्धति-डॉ0 प्रोमिला कपूर हिन्द पॉकेट बुक्स, 1993 पृ0 29।
33. बन्द गलियों के विरूद्ध, स्त्री का भविष्य अर्चना वर्मा, संपादक मृणाल पाण्डे/क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन, 2001 पृष्ठ 48।
34. वही,
35. औरत अस्तित्व और अस्मिता, अरविंद जैन सारांश प्रकाशन, 2000 पृ050
36. वही,
37. बन्द गलियों के विरूद्ध, स्त्री का भविष्य अर्चना वर्मा, संपादक मृणाल पाण्डे/क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन, 2001, पृष्ठ 47।
38. आवां, चित्र मुद्गल सामयिक प्रकाशन, 1997, पृ0 461।
39. वही, पृ0 205

पृष्ठ 53 का शेष

4. वर्तमान, अनूप- 560
5. साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, नरेन्द्र सिंह, पृ0 150
6. गुरू कुल शोध भारती, अक्टूबर 2010, अंक- 14 पृ0- 11
7. ऋग्वेद, 10-191-2
8. वही;, 10-191-4
9. वही;, 5-60-5
10. गुरूकुल, शोध भारती, अक्टूबर 2010, अंक- 14, पृ0- 10
11. उत्पीड़न की यात्र, लक्ष्मीनारायण सुध्कर, पृ0 61
12. अथर्ववेद, 12-1-14
13. ऋग्वेद, 5-66-6
14. वही;, 5-82-2
15. माधवी, भूपेन्द्र शुक्ल, पृ0 119
16. मुक्तिबोध रचनावली प्रथम भाग, नेमिचन्द्र जैन, पृ0- 211
17. पुरानी जुतियों का कोरस, नागार्जुन, पृ0 30
18. ऋग्वेद, 1-89-8
19. वही;, 10-124-5
20. मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड- 5, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, सं0 नेमिचन्द्र, पृ0- 76
21. सहृदय, जनवरी-मार्च, 2011, अंक- 7, पृ0- 23